क्यों नहीं सुनते हैं प्रधानमंत्री!

प्रेम सिंह

हरियाणा के नूह कस्बे में सांप्रदायिक हिंसा के दौरान और जयपुर-मुंबई सेंट्रल सुपरफास्ट एक्सप्रेस के सवारी डिब्बे में होने वाली हत्याओं के संदर्भ में लिखा गया 'दि इंडियन एक्सप्रेस' (2 अगस्त 2023) का प्रथम संपादकीय गौर-तलब है। संपादकीय का शीर्षक 'लाइन खींचो' (ड्रा दि लाइन) सख्त हिदायत और चेतावनी के अंदाज में लिखा गया है। संपादकीय के उप-शीर्षक से यह तथ्य स्पष्ट है: "ट्रेन और हरियाणा की सड़कों पर हुईं हत्याओं की घटनाएं अलग-अलग हैं। लेकिन दोनों ही नफरत, दंड-मुक्ति (इम्प्यूनिटी) और शासकीय चुप्पी (अफिशल साइलेंस) के चक्र (साइकल) की ओर इशारा करती हैं।" यहां प्रयुक्त साइकल शब्द बताता है कि अखबार पाठकों को यह संप्रेषित करना चाहता है कि नफरत फैलाने पर सजा न मिलने का विश्वास और शासन की चुप्पी का यह सिलसिला चक्र-दर-चक्र लंबे समय से चल रहा है। इसीलिए अखबार ने संपादकीय की मार्फत अपनी राय जाहिर की है कि इस चक्र को अब आगे बिल्कुल नहीं चलने देना चाहिए।

संपादकीय में इस चक्र से मुक्ति पाने के लिए देश के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से अपील की गई है: "सत्ता में अपने अब तक के लगभग दो कार्यकालों में, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने राजनीतिक पूंजी का दुर्जेय भंडार जमा किया है। विपक्ष उनकी इस ताकत से अकेले निपटने में साफ तौर पर असमर्थ अनुभव करता है। लिहाजा, वह भाजपा से टक्कर लेने के लिए एक साझा मोर्चा - इंडिया - बना कर एकजुट हो गया है। प्रधानमंत्री मोदी को अपने पूरे राजनीतिक वजन का इस्तेमाल अपनी पार्टी और सरकार तथा लोगों को यह अत्यंत आवश्यक संकेत देने में डालना चाहिए कि उनके बनाए "न्यू इंडिया" में डर पैदा करने, असुरक्षाओं को गहरा करने और कानून के शासन को उलट देने जैसे कृत्य करने वाले लोगों को इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ेगी।"

यह सही है कि समाज में नफरत, हिंसा और हत्याओं के अनवरत चक्र से चिंतित होकर सत्ता के शीर्ष पर स्थित प्रधानमंत्री से अविलंब हस्तक्षेप की गुहार लगाई जाए। अखबार ने वही किया है। लेकिन उसके संपादकीय में एक स्पष्ट विरोधाभास देखा जा सकता है। क्या प्रधानमंत्री अपनी पार्टी और सरकार से अलग हैं? पार्टी से उन्हें एकबारगी अलग मान भी लिया जाए, लेकिन जो सरकार वे चलाते हैं, क्या उससे भी उन्हें अलग माना जा सकता है? संपादकीय के उप-शीर्षक में जिस सरकारी चुप्पी की बात कही गई है, क्या वह प्रधानमंत्री की सरकार से अलग कोई सरकार है? सांप्रदायिक नफरत और हिंसा का कारोबार चलाने वालों को सजा के भय से मुक्ति का विश्वास पिछले करीब दस सालों से कौन-सी सरकार ने दिया हुआ है? संपादकीय पढ़ने वाले के दिमाग में स्वाभाविक तौर पर ये मुनासिब सवाल उठते हैं।

समाचारपत्र-पत्रिकाओं में काम करने अथवा लिखने वाले कुछ भले पत्रकार और स्तम्भ लेखक पिछले दस सालों से सांप्रदायिक नफरत और हिंसा को रोकने के लिए बार-बार प्रधानमंत्री से अपील करते पाए जाते हैं। सर्वोच्च न्यायालय भी कई बार यह अपील कर चुका है। बहुत से संजीदा नागरिक, विद्वान और नागरिक समाज संगठन भी संविधान और मानवता का वास्ता देते हुए प्रधानमंत्री से सांप्रदायिक नफरत और हिंसा रोकने की अपील करते रहते हैँ। कई बार वैश्विक संस्थाएं/संगठन भी यह कर चुके हैं। लेकिन बार-बार की अपील के बावजूद प्रधानमंत्री सुनते नहीं हैं। नफरत और हिंसा के निरंतर फैलाव पर प्रधानमंत्री की चुप्पी का कारण मुख्यधारा मीडिया में साफ तौर पर कभी नहीं बताया जाता। पिछले करीब दस सालों से यह स्थिति बनी हुई है। खुली नफरत और हिंसा के मामलों में प्रधानमंत्री की चुप्पी की स्थिति पर लाइन खींचने का समय आखिर कब आएगा! कब यह साफ तौर पर कहा जाएगा कि प्रधानमंत्री की राजनैतिक पूंजी का दुर्जेय भंडार सांप्रदायिक नफरत और हिंसा के रास्ते भरता है!

बेहतर होता अखबार अपने संपादकीय के जरिए इस बार प्रधानमंत्री के बजाय उनकी सरकार और पार्टी में शामिल कुछ संवेदनशील नेताओं से अपील करता कि वे अपने प्रभाव का इस्तेमाल करके प्रधानमंत्री पर दबाव डालें कि नफरत और हिंसा का यह राजनीततिक कारोबार अब और नहीं चलाना है। अखबार नफरत और हिंसा फैलाने वाले सामान्य और विशिष्ट लोगों से भी अपील कर सकता था कि वे समग्र समाज के हित में थोड़ा ठहर कर अपनी भूमिका के बारे में सोचने की कृपा करें। दायरे को बढ़ाते हुए इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के मालिकों और कर्मियों, बड़े बिजनस घरानों, अमेरिका-यूरोप में बसे अप्रवासी भारतीयों से भी अपील की जा सकती है कि वे नफरत और हिंसा को रोकने में अपनी सकारात्मक और रचनात्मक भूमिका निभाएं। विपक्षी पार्टियों के नेताओं/कार्यकर्ताओं से सांप्रदायिक राजनीति के दुष्चक्र का भागीदार न बनने की अपील की जा सकती है। सेकुलरवादियों से भी अपील की जा सकती है कि वे आत्मालोचन करें कि मौजूदा संकट के लिए वे भी जिम्मेदार हैं; दिन-रात आरएसएस/भाजपा को कोसने के बजाय संकट के समाधान की दिशा में उन्हें रचनात्मक भूमिका निभानी चाहिए। एक अपील यह भी हो सकती है कि नफरत और हिंसा के पैदल सिपाही सांप्रदायिक राजनीति के शिकार (विक्टिम) हैं, जो भारतीय राजनीतिक विमर्श और गतिविधियों के केंद्र में स्थापित हो चुकी है। उन्हें दुत्कारने या ललकारने के बजाय उनके साथ संवाद की जरूरत है।

विशुद्ध इस्लाम का आग्रह रखने वालों से भी अपील की जा सकती है कि विशुद्धता दरअसल कट्टरता का ही दूसरा नाम है। धर्म की उदार और लचीली धारा और व्याख्या ही जीवन को सही दिशा और सार्थकता देती चलती है। उसीसे धर्म का निरंतर संवर्द्धन भी होता चलता है। मैंने

धार्मिक सद्भाव के काम में लगे साथी फैजल खान से पूछा कि नूह में शोभायात्रा पर पत्थर फेंकने, लोगों पर हथियारों से जानलेवा हमला करने, वाहनों और संपत्तियों को आग लगाने वाले लोगों के पीछे क्या किसी खास संगठन या योजना का हाथ था? उन्होंने बताया यह शोभायात्रा के पहले प्रसारित अपशब्दों और भड़काऊ नारों की तुरता प्रतिक्रिया थी। मेरा बचपन से मेवों (मेवात के मुसलमानों को मेरे गांव में मेव कहा जाता था) के बारे में थोड़ा अनुभव रहा है। वे काफी बाद में धर्मांतरित हुए थे, और उदार इस्लाम की धारा के अंतर्गत आते हैं।

ऐसा माना जाता है कि खासकर मेव मुसलमान विभाजन के समय गांधी के आग्रह पर भारत में रुके थे। भगवान दास मोरवाल के प्रसिद्ध उपन्यास 'काला पहाड़' में यह तथ्य रचनात्मक स्तर पर चित्रित हुआ है। नए भारत (न्यू इंडिया) में सब तरफ से दुत्कारे जाने वाले गांधी का मान रखने के लिए ही सही, मेवों को अपशब्दों पर हिंसक प्रतिक्रिया नहीं करनी चाहिए थी। पुराने भारत में इस समझ की शिक्षा देने वाले काफी लोग होते थे कि अपशब्द, बोलने वाले के अपने ऊपर ही आते हैं। हमला करने वाले मेवों को इस समझदारी का सहारा लेकर अपशब्दों से उत्तेजित होकर अपनी मर्यादा का त्याग नहीं करना चाहिए था। अगर किसी एक व्यक्ति ने भी गलती की थी तो उसका वहीं तुरंत सुधार करना चाहिए था। हिंसा में शामिल लोगों ने कानूनन अपराध तो किया ही है, मेवात क्षेत्र के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश को भी भारी नुकसान पहुंचाया है। साथ ही उन्होंने नूह के आस-पास के इलाकों में रहने वाले मुस्लिम समाज के लिए भी खतरा पैदा किया है।

अपील का एक वृहद क्षेत्र देश की महिलायें हो सकती हैं। उनकी सजग और सक्रिय भूमिका इस बुराई को मिटाने में शायद सबसे ज्यादा असरकारक हो सकती है। समाज के सभी लोग लोग/संगठन सांप्रदायिक नफरत और हिंसा को रोकने के प्रयास करें तब हो सकता है नरेंद्र मोदी और उनकी टीम भी इस विषय पर कुछ सकारात्मक ढंग से सोचने-समझने के लिए तैयार हो जाए।

अंत में एक बात और। संपादकीय में प्रधानमंत्री से उनके "न्यू इंडिया" का वास्ता देकर हस्तक्षेप करने की अपील की गई है। अर्थात नया भारत जैसे "स्वर्ग" में नफरत और हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए! नए भारत को स्वर्ग मानने पर देश के शासक-वर्ग में प्राय: मतैक्य है। यहां इस मुद्दे पर विस्तार से विचार नहीं किया जा सकता। केवल इतना कहना है कि न्यू इंडिया एक समस्यात्मक अवधारणा और परियोजना है, जिसका सांप्रदायिक नफरत और हिंसा के साथ सीधा संबंध बना हुआ है। नया भारत बहुस्तरीय आर्थिक विषमता और बेरोजगारी का स्थाई स्रोत है। इस सच्चाई से ध्यान हटाए रखने के लिए सांप्रदायिक नफरत और हिंसा का प्रचार-प्रसार किया जाता है। यह एक अनंत सिलसिला बने रहना है, अगर नए भारत की अवधारणा और परियोजना पर गंभीरता और ईमानदारी से विचार नहीं किया जाता।

(*समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के पूर्व फ़ेलो हैं।*)